

06 इतिहास का सृजन

bfrgkl dhd{kk esa vUošk.k d¨ çsfjr djuk

श्रीपर्णा तम्हाणे

विद्यार्थियों द्वारा इतिहास को नापसन्द करने का एक कारण यह है कि वे इसके साथ अपना नाता नहीं जोड़ पाते। वे अतीत को इस लिहाज से समझ नहीं पाते जो उन्हें घटनाओं, कालखण्डों और व्यक्तियों की परस्पर तुलना करने और उनके भेद समझने के काबिल बनाता हो या समय की धारा पर सेतु बनाने में उनकी मदद करते हुए उन्हें अतीत की रोशनी में वर्तमान को देखने की दृष्टि देता हो।

विषय को नापसन्द करने का दूसरा कारण यह है कि अक्सर विद्यार्थियों को ऐसे अभ्यास नहीं कराए जाते जो उन्हें पड़ताल के लिए प्रेरित करें। पड़ताल की प्रक्रिया का अभ्यास ही विद्यार्थियों को इतिहास अध्ययन का वास्तविक महत्व समझाने में सहायक होता है – समस्या की समझ और उसका विश्लेषण, प्रश्न पूछना, अनुसन्धान करना, प्रासंगिक साक्ष्यों की पहचान और उनकी विश्वसनीयता का आकलन, इन साक्ष्यों के बल पर कामचलाऊ से टिकाऊ निष्कर्षों तक पहुँचना, अपने कामचलाऊ व टिकाऊ निष्कर्षों को कारगर ढंग से अभिव्यक्त कर पाना। इस समूची प्रक्रिया के दौरान उन्हें एक इतिहासकार की तरह सोचने और इतिहास की पुनर्रचना करने का अवसर मिलता है।

पुणे में जे. कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन द्वारा संचालित एक स्कूल में कक्षा छह के विद्यार्थियों का परिचय, इतिहास से कराते हुए, मैं अक्सर कहा करती कि हर चीज का एक इतिहास होता है। स्वयं बच्चों को ही लें तो उनका परिवार, उनका स्कूल, स्थान व चीजें जिनके सम्पर्क में वे आते हैं; ये सब मिलकर उनका एक इतिहास रचते हैं। मैं उन्हें अपने इस इतिहास के एक हिस्से को खंगालने और उसे रचने के लिए प्रेरित करती।

इसी प्रक्रिया के तहत हमें पड़ोस के एक ऐसे मन्दिर का इतिहास खंगालने और उसे लिखने का अनुभव हुआ जिसके बारे में हमारे पूरे स्कूल समुदाय में से किसी को भी ज्यादा कुछ मालूम न था। देखा जाए तो यह काम चुनौती भरा था, क्योंकि एक कम चर्चित मन्दिर चुनकर अपने अनुसन्धान हेतु पर्याप्त साक्ष्य जुटा पाने को लेकर मैं बहुत आश्वस्त तो न थी। बहरहाल, मैंने शुरुआत तो की यह महसूस करके कि इसके नतीजतन कम से कम बच्चे अनुसन्धान की प्रक्रिया से तो दो–चार होंगे और इतिहासकारों के काम करने के तरीकों की कुछ थाह भी वे पाएँगे।

हमारे पास ऐसा कोई साहित्य नहीं था जिसके सहारे हम उस मन्दिर के बारे में कुछ जानकारी जुटाते। सो हमने अपनी यात्रा की शुरुआत 'शम्भू पहाड़ी' पर दो घण्टे की चढ़ाई से की जिसका नाम उस शिव मन्दिर पर रख गया था, जिसकी पड़ताल के अभियान पर हम निकले थे। मैं और मेरे बारह वर्षीय 20 बच्चे अपनी–अपनी स्केचबुक्स, नोटबुक्स और पेंसिलों के साथ अनुसन्धान यात्रा का उछाह अपने दिलों में लिए–लिए, लस्तम–पस्तम ही सही उस पहाड़ी पर चढ़ गए।

मन्दिर के पुजारी से मैं पहले ही निवेदन कर चुकी थी कि



एक पुराना हिन्दू मन्दिर



शम्भू पहाड़ी से सूर्योदय

हमारे वहाँ पहुँचने पर मन्दिर के बारे में बताने वगैरह के लिए वे वहीं उपस्थित रहें। हमारे अभियान के शुरुआती चरण में मन्दिर के परिसर की टोह लेना भी शामिल था। अपने सर्वेक्षण के दौरान बच्चों ने मन्दिर के विभिन्न हिस्से देखे और उनके बारे में जाना –

1. गर्भगृह, जहाँ मुख्य मूर्ति स्थापित है,
2. 'साधना स्थल' जहाँ प्रार्थनाएँ होती हैं,
3. बीच में 'मण्डप' जहाँ लोग एकत्र होते हैं,
4. 'तुलसीस्थान' किसी भी भारतीय मन्दिर में जिसका अपना महत्व होता है,
5. दर्शनार्थियों की शरण हेतु मन्दिर के साथ लगा 'भक्तनिवास',
6. मन्दिर के चारों तरफ परिक्रमा लगाने के लिए 'परिक्रमा पथ',
7. उत्तर भारत के मन्दिरों की एक विशिष्टता 'शिखर', आदि–आदि।

इसके अलावा, उन्होंने मन्दिर के निर्माण में लगी सामग्री के बारे में भी जानकारी इकट्ठी की। एक तरह से, मन्दिर वास्तुकला के विषय में यह उनका पहला पाठ था। बच्चों ने अपनी स्केचबुक्स में मन्दिर के अलग–अलग हिस्सों के स्केच भी बनाए। इनमें से कुछ रेखाचित्रों को देखना अपने आप में एक सुखद अहसास था। कई जगह उनके चित्रण इतने बारीक व जटिल थे कि उनसे न सिर्फ उनकी कलात्मक दक्षताएँ झलकती थीं, बल्कि उनकी पैनी व मुस्तैद नजर के भी दर्शन होते थे।

गर्भगृह में महिलाओं का प्रवेश वर्जित होने की अफसोसजनक बात सुनकर तो उनके सवालों की झड़ी–सी लग गई और ग्रुप की लड़कियों में एक रोष–सा छा गया। शारीरिक/सांस्कृतिक कारणों के चलते पूजाघरों में व्याप्त इस लैंगिक भेदभाव से अचानक हुई इस मुठभेड़ ने हमारे इन उदीयमान नन्हे चिन्तकों को उद्वेलित कर दिया। फिर तो बस सभी बच्चों द्वारा सवाल पर सवाल दागे जाने लगे, "भगवान की पूजा करने के लिए क्या मन्दिर जाना जरूरी है?" "ज्यादातर पुजारी पुरुष ही क्यों होते हैं, स्त्रियाँ क्यों नहीं?", "ईश्वर को खुश करने के लिए हमें कुछ खास धर्मानुष्ठान क्यों करने पड़ते हैं?", "एक निर्दोष की बलि भला कैसे पूजा–अनुष्ठान का कोई हिस्सा हो सकती है?", "सारे धर्मों का उद्देश्य यदि शान्ति है तब फिर हम लोग



मन्दिर की दीवार पर लेख

क्यों अलग–अलग धर्मों को लेकर एक–दूसरे से इतना लड़ते–झगड़ते हैं?" अगले कुछ दिन इन सभी सवालों पर खुलकर बहस होती रही। स्पष्ट ही कुछ विश्वास और रीति–रिवाज ऐसे थे जिनसे वे परिचित थे और कुछ ऐसे जो उनके लिए अजाने थे। यह बात आश्वस्त करती थी कि इनमें से कुछेक आस्थाओं व परम्पराओं पर सवाल खड़े करने से वे झिझकते नहीं थे।

पुजारी ने वहाँ लगने वाले सालाना मेले के सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक पक्षों की भी जानकारी दी। मेले के

दिनों में अन्यथा सुनसान पड़े उस मन्दिर पर अचानक रौनक सी छा जाती और आसपास के गाँवों से लोग जत्थों में उमड़े चले आते और हमारा यह मन्दिर चहलपहल का केन्द्र बन जाता। अब आया मन्दिर के प्रबन्धन का सवाल। ये सारे कार्यक्रम आयोजित कौन करता है? मन्दिर का दैनिक प्रबन्धन किसके जिम्मे होता है? मन्दिर के रख–रखाव के लिए पैसा वगैरह कहाँ से आता है? पुजारी ने बताया कि मन्दिर के मामलों के प्रबन्धन हेतु एक ट्रस्ट बनाया गया है।

इस भ्रमण के दौरान, हम लोग लगातार ऐसे अभिलेखों की खोज में लगे रहे जिन पर उस मन्दिर का इतिहास अंकित हो। दो–ठो अभिलेख हमें मिले भी जिनके अनुसार वह मन्दिर कोई 200 बरस पुराना था, और यह भी कि एक होल्कर राजा को आखेट के दौरान संयोग से चार शिवलिंग मिल गए थे और इस मन्दिर का निर्माण अहिल्याबाई होल्कर ने करवाया था। इस सुराग के सहारे बच्चों ने फिर होल्कर राजघराने और उनके राजक्षेत्र के सम्बन्धों की पड़ताल की।

पुजारी से हमने इतिहास के बारे में भी पूछताछ की। उसके द्वारा बताया गया विवरण टुकड़े–टुकड़े था जिसमें कई रोचक प्रसंगों का छौंक भी लगा था, जिन्हें हमने एक तारतम्य में बाँधने की कोशिश की। लेकिन और अधिक जानकारी जुटाने के लिए हमें सवालों की एक बौछार–सी लगानी पड़ी। अन्ततः हमारा अभियान समाप्त होते–होते हमारे पास उस मन्दिर का एक अदद ब्योरा हो चला था। लेकिन, बच्चों के लिए यह समझना भी जरूरी था कि जिसे उन्होंने 'इतिहास' के बतौर सुना है वह कुछ और नहीं बस एक व्यक्ति की यादों से बुना एक संस्करण मात्र है जो हमें मौखिक रूप में दिया गया है। सो, निश्चित ही ऐसे और भी साक्ष्य होंगे जो इस संस्करण की पुष्टि करेंगे या इसका खण्डन करेंगे।

इस बाबत किंचित लिखित साहित्य जुटा पाने सम्बन्धी हमारी ईमानदार कोशिशें हालाँकि शुरू में तो व्यर्थ गईं, क्योंकि इस बाबत हम एक भी स्रोत जुटा न पाए।

तब हमने इस बारे में अन्य लोगों के पास उपलब्ध संस्करणों को जानने का निर्णय लिया। हम पास के एक गाँव गए और वहाँ जाकर गाँव के मुखिया और एक पुराने स्कूल टीचर से मुलाकात की। इतिहास की जो झलकियाँ उन्होंने हमें दीं उनमें से अधिकांश तो पुजारी के आख्यान से मिलती–जुलती लगती थीं। हम लोग ट्रस्ट के कम से कम एक सदस्य से तो मिलना ही चाहते थे। आखिरकार हमारी मेहनत रंग लाई और बड़े ही चमत्कारिक ढंग से हमारे हाथ एक महत्वपूर्ण स्रोत लगा – एक ऐसे दस्तावेज की प्रति, जो हमारे लिए बड़ी मूल्यवान थी।

अब इस दस्तावेज का सृजन भी अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना थी। किसी समय, उस जगह की विरासत को जीवित रखने की दृष्टि से, मन्दिर के न्यासियों ने मन्दिर का जीर्णोद्धार करने का निर्णय लिया क्योंकि मन्दिर अब काफी पुराना हो चला था। उनकी योजना पीने का पानी उपलब्ध कराने, अधिक संख्या में पेड़ लगाने, बाहर से आए श्रद्धालुओं के ठहरने के लिए कमरे और वाहन–पार्किंग बनाने की थी। लेकिन उन्हें यह जल्दी ही समझ में आ गया कि जिस जमीन पर मन्दिर बना था, वह दरअसल वन विभाग की थी सो मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए केन्द्र सरकार की मंजूरी जरूरी थी। अब भारत सरकार को भेजे जाने वाले प्रस्ताव के साथ मन्दिर के इतिहास और उसके ऐतिहासिक भवन के धार्मिक व सामाजिक महत्व के बारे में भी बताया जाना था। परियोजना की कुल लागत 15 लाख रुपए ठहरी। चूँकि उस स्मारक को 'सी श्रेणी' के तीर्थाटन का दर्जा प्राप्त था सो उन्हें सरकार से पुनरुद्धार की राशि मिलने की पूरी उम्मीद थी।

हमारी इस यात्रा का सबसे सुखद पड़ाव था इस दस्तावेज का एक पुराना, धूल सना, जिल्द चढ़ा संस्करण हाथ लगना। बच्चों ने इत्मीनान से इस प्रस्ताव का अध्ययन कर वह तमाम जानकारी हासिल की जिसकी उन्हें तलाश थी और फिर इससे मिलान करके पूर्व में मिली जानकारी की पुष्टि की गई।

दरअसल, दस्तावेज ने लोगों द्वारा मौखिक रूप से प्रदत्त अधिकांश जानकारी को सम्पुष्ट ही किया। स्मारक पर

प्रत्यक्षतया कोई औपचारिक पुस्तक लिखी न जाने की सूरत में 'शम्भू महादेव' मन्दिर का एक तदर्थ इतिहास लिखने की दृष्टि से हम शायद इतनी ही दूर जा सकते थे। लेकिन हमें पढ़ाया जाने वाला अधिकांश इतिहास भी तो शायद इतना ही 'तदर्थ' या उतना ही 'अन्तरिम' होता है; नहीं क्या? इतिहास यानी कुछ ऐसे अन्तरिम निष्कर्ष जो तब तक 'सही' माने जा सकते हैं जब तक कि नए साक्ष्य की रोशनी में वे 'गलत' प्रतीत न हो जाएँ?

उपलब्ध स्रोतों के बल पर अतीत का लेखा लिखे जाने की प्रक्रिया के दौरान बच्चे यह सीखते हैं कि अतीत के विभिन्न संस्करण एक–दूसरे से अलग–अलग हो सकते हैं। क्योंकि साक्ष्य अपूर्ण हैं और अतीत का पुनर्निर्माण प्राय: अलग–अलग दृष्टिकोणों से होता है। यह प्रक्रिया और यह बोध बच्चों के साथ बना रहे, मैं यही चाहती थी।

शुरुआत में हमें यह नहीं मालूम था कि इतिहास चिनने के हमारे इस उद्यम में हम मौखिक परम्पराओं की हदों से परे जा भी पाएँगे या नहीं; हमें यह भी नहीं पता था कि लिखित साहित्य या शिलालेख की शक्ल में हमें कोई सम्पुष्टकारी साक्ष्य मिलेगा या नहीं! लेकिन अगर हमें यह सब नहीं भी मिला होता तो भी हमारे अनुभव ने इतिहास सम्मत विवेचना के आधारभूत सिद्धान्तों से हमारा परिचय तो करा ही दिया होता।

इस अनुभव से मुझे और क्या मिला?

ऐतिहासिक स्मारकों के प्रति एक जिज्ञासा पैदा करने, मन्दिर वास्तुकला के कुछ बुनियादी तत्त्वों से बच्चों का परिचय करवाने, साक्ष्यों की पड़ताल करने और उनके निहितार्थ समझने, ऐतिहासिक इमारतों के जरिए विभिन्न अनुशासनों के बीच सम्बन्ध बनाने, हमारी स्थापित विरासत के प्रति उनकी जागरूकता बढ़ाने और उसके प्रति उन्हें संवेदनशील बनाने तथा हमें सुपुर्द मूल्यों व परम्पराओं के विवेचनात्मक परीक्षण को प्रोत्साहित करने के अलावा मैं अपने बच्चों को तथ्यान्वेषण करने, जाँचने–परखने और अपने सीमित दायरे में इतिहास को सृजित करने हेतु प्रोत्साहित कर पाई।



__श्रीपर्णा__ इन दिनों अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बंगलौर में एक विषय विशेषज्ञ की हैसियत से काम कर रही हैं। अपनी इस भूमिका में वे शिक्षकों के लिए बनी एक वेबसाइट www.teachersofindia.org हेतु डिजिटल व डिजिटलेतर सामग्री का सृजन करती रही हैं। जे. कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन स्कूलों में अँग्रेजी व सामाजिक अध्ययन पढ़ाने का उन्हें 15 वर्ष लम्बा अनुभव रहा है। पाठ्यक्रम निर्माण व शिक्षक ज्ञान–संवर्धन के उपक्रमों से भी वे जुड़ी रही हैं। उन्होंने शिक्षक–मार्गदर्शन (टीचर मेण्टरिंग) के क्षेत्र में भी काम किया है और कई शिक्षक–संवधर्न कार्यशालाएँ (टीचर एनरिच्मेण्ट वर्कशॉप्स) भी संचालित की हैं। उनसे सम्पर्क करने का ई–पता है : sriparna.tamhane@azimpremjifoundation.org । __अनुवाद__: मनोहर नोतानी